

सूफी संगीत से रूहानी खुशी

आलेख और फोटोग्राफ: क्रिस्टोफर हॉलैंड

दक्षिण एशियाई सूफी संगीत से एक बार रूबरू होने का अनुभव फुलब्राइट स्कॉलर क्रिस्टोफर हॉलैंड को सूफी संगीत के बारे में और ज्यादा जानने की इच्छा के साथ दक्षिण एशिया में ले आया। उनकी यह यात्रा उमस भरी एक रात को नई दिल्ली की एक दरगाह में जाकर पूरी हुई जहां उन्होंने कव्वालों को सुना और रूहानी अनुभव महसूस किया।

मुझे अब भी याद है कि कई साल पहले मेरे कुछ दोस्तों ने मुझे पाकिस्तान के एक बेमिसाल सूफी गायक के बारे में बताया था। मेरे उन दोस्तों का दावा था कि मैं उसका गायन सुनकर अपनी सुधबुध खो बैठूंगा। मेरे दोस्त इस बात से अच्छी तरह वाकिफ थे कि संगीत से मेरा लगाव बड़ा गहरा है। अपने इस फन को नए सुर देने और इसको और समृद्ध करने के लिए मुझे हमेशा कुछ नए की तलाश रहा करती थी। मैंने मित्रों की सलाह मानी और इस फनकार का नाम एक कागज पर लिख लिया। लिखा इसलिए, क्योंकि मुझे उसके नाम का उच्चारण करने और उसे याद रखने में दिक्कत हो रही थी। खैर, इस तरह मैंने नुसरत

फतेह अली खां का पहला अल्बम खरीदा। उनका गायन सुनकर मैं सचमुच मंत्रमुग्ध हो गया। मेरी हालत कुछ ऐसी ही थी, जैसे कोई बच्चा अपने नए खिलौने से खेलते हुए इस बात से बेखबर रहता है कि बाकी दुनिया में क्या हो रहा है। इसके बाद तो उस अल्बम को मैंने न जाने कितनी बार सुना। एक बार शुरू करता, तो पूरा सुने बगैर उठ नहीं पाता। शब्दों का अर्थ तो मैं समझ नहीं पा रहा था और संगीत की शैली भी उस अंदाज से बिल्कुल ही अलग थी, जिसे सुनने के हम अभ्यस्त थे, पर बावजूद इसके उनका गायन पूरी शिद्दत से मेरी आत्मा को छू रहा था। मेरे दिल की गहराइयों में उतर रहा था। मैं सचमुच अपनी सुधबुध खो रहा था। मैं मूल रूप से दक्षिणी अमेरिका के जॉर्जिया क्षेत्र का निवासी हूँ। फतेह अली साहब का गायन सुनते हुए मुझे और कुछ तो नहीं, पर चर्च में दिल की गहराइयों से निकलने वाले संगीत की याद जरूर आ रही थी, जिसे मैं अक्सर सुनता रहता था।

नुसरत साहब के अल्बम ने मेरे लिए सूफी संगीत की दुनिया के दरवाजे खोल दिए थे। इन बातों को एक अर्सा बीत गया है, पर उन लम्हों को याद करके आज भी मेरे चेहरे पर एक मुस्कान दौड़ जाती है। नुसरत की आवाज सूफी गायन शैली पर आधारित

ये कव्वाल महफिल-ए-समा में भाग लेने के लिए फतेहपुर-सीकरी, उत्तर प्रदेश गए जहां सूरज की किरणों के आगमन के साथ ही कव्वाली की परंपरा है।

है और यह शैली दक्षिण एशिया में ही पाई जाती है, जिसमें कव्वालियों का गायन बहुत प्रचलित है। रूह की गहराइयों से जुड़े ऐसे संगीत की मैंने अमेरिका में खोज करने की बहुत कोशिश की, पर तमाम प्रयासों के बावजूद नाकामयाबी ही हाथ लगी। अब तक मैं समझ चुका था कि इसके लिए मुझे दक्षिण एशिया का रुख करना ही पड़ेगा। कुछ समय बाद, पिछले साल मैं आखिर दिल्ली पहुंच गया। वहां पहुंचने पर मैंने पाया कि संगीत और कला के हर रूप में तब सूफी संगीत की धूम थी। अखबार में जब किसी भी नए अल्बम का जिक्र होता तो साथ में यह दावा जरूर नत्थी होता कि यह सूफी संगीत पर आधारित है।

मुझे इन सभी बातों ने काफी आकर्षित किया, क्योंकि मैं भारत में अपने प्रवास के दौरान उस सूफी कला के बारे में अधिक से अधिक सीखना-जानना चाहता था, जिसका रास्ता मुझे नुसरत साहब की दिलकश आवाज ने दिखाया था। मैंने जिला खां, आबिदा परवीन, पंकज अवस्थी और स्ट्रिंग्स जैसे कई गायकों के नए संगीत अल्बम सुने। साथ ही मदन गोपाल, वडाली भाइयों, हुमासर हयात की कई सूफी प्रस्तुतियों के अलावा सालाना उर्स 'जहां-ए-खुसरो' देखा। इन सबका अपना एक अलग ही सूफियाना रंग था। लेकिन ये अल्बम और प्रस्तुतियां आनंद देने वाली तो थीं, पर इन्होंने मेरी उस प्यास को पूरी तरह शांत नहीं किया जो नुसरत साहब का सूफियाना गायन





सुनकर मेरे भीतर जगी थी। इससे कुछ हताश सा होकर मैं गुरुवार की एक उमस भरी रात में दिल्ली के निजामुद्दीन गांव में हजरत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर जा पहुंचा। उस वक्त वहां कव्वाली चल रही थी। इसे सुनकर मुझे काफी सुकून मिला। मैं थोड़ी ही देर में गर्मी और उमस की बात तो खैर भूल ही गया, मुझे लगने लगा कि मैं अमेरिका में अपने ही घर में पूरे सुकून के साथ बैठा हुआ हूँ। मुझे वे पल भी याद आ रहे थे जब मैंने पहली बार नुसरत साहब का अल्बम सुना था। ये कव्वाल घंटों गाते रहे। बीच में उठे भी तो सिर्फ नमाज अदा करने के लिए। कव्वाल जिस तन्मयता और जीवंतता के साथ खुदा की इबादत कर रहे थे, उसने मुझे अपने मुल्क के उस चर्च की याद दिला दी, जिसका रूहानी संगीत मेरे रोम-रोम में खुशी भर देता था।

इसके बाद मैं कई बार दरगाह गया और उर्दू का कामचलाऊ ज्ञान होने के कारण जल्द ही कई कव्वालों से मेरी दोस्ती भी हो गई। इस दौरान कव्वाली के बारे में मेरी उनसे लंबी बातचीत होती और मैंने यह जानने की कोशिश शुरू कर दी कि कई बड़े राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद संगीत की यह विधा सात सौ साल बाद भी कैसे कायम रह सकी। कव्वाली की शुरुआत 13वीं सदी में सूफीवाद में चिश्ती परम्परा के संस्थापक हजरत मोइनुद्दीन चिश्ती के बगदाद से अजमेर (राजस्थान) आने पर हुई। चिश्ती साहब ने यहां धार्मिक भेदभाव से दूर रहते हुए सूफी परम्परा को

नई दिल्ली के चिराग गांव में शेख नसीरुद्दीन की दरगाह पर भक्ति गीत गाता एक मुअज्जिन।

दाएं: क्रिस्टोफर हॉलैंड ने फरवरी में नई दिल्ली के इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में अपने फोटोग्राफों की प्रदर्शनी आयोजित की।



आगे बढ़ाया। उन्होंने खुदा की इबादत के लिए अरबी और फारसी के गीतों को हिंदुओं की कीर्तन शैली में कुछ जुदा अंदाज में गाया और एक नई विधा के बीज रखे। इसके करीब सौ साल बाद अमीर खुसरो ने मोइनुद्दीन चिश्ती की गायन शैली को अपने अंदाज में संवारा और इस तरह कव्वाली का जन्म हुआ। कला मर्मज्ञ अमीर खुसरो को तबले और सितार का जनक भी माना जाता है। हजरत निजामुद्दीन दरगाह के कव्वाल बातचीत के दौरान मुझे कव्वाल बच्चों की कथा सुनाना नहीं भूलते।

दरगाह के एक बुजुर्ग कव्वाल मेराज अहमद निजामी बताते हैं, “अमीर खुसरो अपने शेख निजामुद्दीन के लिए कुछ खास करना चाहते थे। इसके

लिए उन्होंने 12 छोटे, मगर प्रतिभाशाली बच्चों को चुना और उन्हें अपने बनाए रागों के गायन में प्रवीण किया। इन बच्चों ने जब शेख के सामने अपनी कला का प्रदर्शन किया तो वह बहुत खुश हुए और तब से इन बच्चों को कव्वाल बच्चे के नाम से जाना जाने लगा।” इसके बाद कव्वाली ने एक पारिवारिक परम्परा का रूप ले लिया। हजरत निजामुद्दीन दरगाह के कव्वाल आज भी अपने को कव्वाल बच्चे बताते हैं और उन 12 बच्चों में से किसी एक से अपना रिश्ता जोड़ते हैं। इन कव्वालों के परिवार के बेटे पीढ़ियों से अपने पिता से कव्वाली की बारीकियां सीखते आ रहे हैं। कई गीतों के फारसी में होने के कारण इस बात पर पूरा जोर रहता है कि बच्चे इन्हें सही तरीके से सीखें और उच्चारण दुरुस्त हो। हां,



नई दिल्ली में निजामुद्दीन औलिया की दरगाह के सज्जादा नशीं कव्वाली महफिल के दौरान नजराना स्वीकार करते हुए।

बदलते वक्त के साथ संगीत शैली में तब्दीली की इजाजत है, ताकि सूफी संगीत के श्रोताओं की नई पीढ़ी को वह पसंद आ सके। कव्वाली के सफर में समय के साथ नए वाद्य यंत्र और तालें भी जुड़ती गईं। कव्वाली में हारमोनियम का प्रयोग 19वीं सदी के प्रारंभ में शुरू हुआ और आज यह कव्वाली का एक अभिन्न अंग है।

कव्वाली आज एक जानी-पहचानी और लोकप्रिय विधा है, लेकिन एक समय था जब कई तरह की राजनीतिक अड़चनों से भी इसको दो-चार होना पड़ा। इस्लाम में खुदा की इबादत में गाना और उसे सुनना (समा) बहस का मुद्दा रहा है। भारत में मुगलों के शासन के दौरान (12वीं से 18वीं सदी तक) इस मुद्दे पर अक्सर विवाद होता था। हर नए शासक की धार्मिक सोच के मुताबिक कभी समा और कव्वाली की इजाजत मिलती तो कभी उन पर

हमला होता। चिरंजीवी सूफी इस मामले में अपना बचाव करते हुए 14वीं सदी के संत हजरत निजामुद्दीन का हवाला दिया करते, जिन्होंने ताजिंदगी समा को जायज बताया। इस सिलसिले में वे अक्सर कुछ पंक्तियां गुणगुनाया करते थे, जिनका हिंदी में अर्थ है:

*तुम कहते हो समा पर बंदिश है,
तो ठीक है तुम पर भी बंदिश है।*

आज सूफीवाद और कव्वाली से प्रेरित संगीत शैली दक्षिण एशिया ही नहीं, पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो रही है। लेकिन बावजूद इसके, कई लोग इस बात से वाकिफ नहीं हैं कि कव्वाली ने भारत की संस्कृति को कितना प्रभावित किया है। बॉलीवुड की स्थापना के बाद से फिल्म उद्योग ने इस विधा का भरपूर इस्तेमाल किया। एक समय बॉलीवुड के संगीतकारों को प्रशिक्षण देने के लिए पाकिस्तान से कव्वालों को बुलाया जाता था, ताकि वे एक नए अंदाज के साथ फिल्मों में कव्वाली की जगह बना सकें। संगीतकारों ने कई लोकप्रिय

कव्वालियों को फिल्मों में पेश किया, पर शब्दों में कुछ हेरफेर के साथ। कव्वालों द्वारा गाए जाने वाले गीतों में खुदा के प्रति मोहब्बत का जो खूबसूरत चित्रण किया जाता है, उसने कई सदाबहार हिंदी फिल्मी गीतों की नींव रखी। इसका इल्म होने के बाद मैंने बॉलीवुड के गीतों को और ध्यान से सुनना शुरू कर दिया। मैंने पाया कि यहां भी सूफी गीतों की तरह इश्क (रोमांस) और महबूब (प्रियतम) जैसे शब्दों का खूब इस्तेमाल हो रहा है और वह भी सूफी परंपरा की ही तरह पूरे माधुर्य के साथ। कव्वालों के साथ बिताए समय में मैंने न सिर्फ नुसरत अली की आवाज में जादू भरने वाली रूहानी परंपरा के बारे में जाना, बल्कि कव्वालों से कुछ राग और गाने भी सीखे। एक बात सोचकर मैं खुश भी था कि दुनिया के जिस कोने में भी मैं जाऊंगा, सूफी संगीत और कला मेरे साथ वहां जाएंगे और यह सफर जारी रहेगा। □

क्रिस्टोफर हॉलैंड अगस्त 2005 से फुलब्राइट छात्रवृत्ति पर भारत में थे। वह एथेंस, जॉर्जिया के रहने वाले हैं।